International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232
Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 4; Issue 2; March 2018; Page No. 01-03

संत बेनामी जी के ब्रह्म–विषयक विचार

सतीश कुमार
महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

"वेद मे ब्रह्म को 'ईशान' कहा गया है। मुंडक उपनिषद मे ब्रह्म को वृहत् और सूक्ष्म एक साथ कहा गया है। 'कठोपनिषद' मे अव्यक्त से भी सूक्ष्म बताया गया है। ब्रह्म को प्राकृतिक गुणों से रहित होने के कारण निर्गुण, दिव्य और अलौकिक गुणों से सम्पन्न होने के कारण सगुण, अणु–अणु में व्यापक होने से निराकार कहा गया है। उपासना द्वारा निराकार ब्रह्म के व्यक्त हो जाने पर उसे साकार कहा जाता है। वेदांत दर्शन में ब्रह्म के परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले निर्गुण और सगुण दोनों स्वरूपों का एक साथ उल्लेख किया गया है और दोनों ही को पारमार्थिक अर्थात् सत्य बतलाया गया है।"[1] "संत काव्य में जहाँ परमात्मा का तात्विक या दार्शनिक स्वरूप निरूपण हुआ है, वहां वह गुणातीत या बहुत कुछ वेदान्ती ब्रह्म बनकर आया है। उसका न कोई रूप रंग है, न कोई आकार। वह न बूढ़ा है, न बालक। न भारी है न हल्का। वह नापा–तोला भी नहीं जा सकता। न वह है, न वह नहीं है। वह अस्ति–नास्ति, और भाव–अभाव से परे है। इसलिए वह मन–वाणी से भी परे है। उसे कोई नहीं जानता। कोई उसे कुछ बताता है, कोई कुछ और वह जो है, वह वही है। जैसा है, वैसा ही है। उसे चर्म चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता, उसके दर्शन पाने के लिए ब्रह्म दृष्टि चाहिए।" संत बेनामी जी के काव्य मे ब्रह्म के इसी रूप के दर्शन होते हैं। ब्रह्म के विषय में बेनामी जी का कथन हैः–

"नमो अलख, आनंद, नमो निःष्कलंक विदेही,
नमो सगुण गुण रहित, नमो निज व्यापक देही।।"[2]

"संतो का ब्रह्म दीन दयाल है, कृपाल है, भक्त वत्सल है और भयहारी है। शरीर मे प्राण डालने वाला भी वही है और अनंत भुजाओं से भक्तों की रक्षा भी वही करता है।"[3]

संपूर्ण संतवाणी साहित्य में अव्यक्त ब्रह्म को व्यक्त करने की विराट चेष्टा दृष्टिगोचर है। ब्रह्म के लिए संतों ने अनंत, अलख, अज्ञात, निरंजन आदि विशेषणों का प्रयोग किया है। सभी संतों की ब्रह्म विषयक भावनाएँ उनकी भक्ति की ही परिपोषक हैं। पुष्प में सुरभि के समान ब्रह्म के संसार मे निवास करने की कल्पना सचमुच अनुपम है। संत कबीर, दादू, रैदास आदि संतों ने अपनी रचनाओं में ब्रह्म के इसी रूप को स्वीकार किया है। बेनामी–पंथ के आचार्य संत बेनामी जी ने भी ब्रह्म के इसी रूप की अभिव्यक्ति अपने ग्रंथ में की है। ब्रह्म के बारे में इन्होंने माना है कि वह तीनों गुणों से परे, निराकर निर्लेप है। इसके साथ–साथ बेनामी जी ने यह भी बताया है कि जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं है। जो जीव है, वही ब्रह्म है और जो ब्रह्म है, वही जीव है। इन दोनों में पृथक्ता का जो कारण है, वह भ्रम है। जीव भ्रम में पड़कर विषय–वासनाओं के चंगुल में फंसकर ही स्वयं को ब्रह्म से भिन्न कर लेता है, परंतु वास्तव में, ये दोनों एक ही हैं। यदि जीव यह चाहता है कि वह ब्रह्म को पहचाने उसका साक्षात् करे, तो इसके लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य अपने घट भीतर ही उसकी खोज करे।
इन्होंने लिखा हैः–

"टट्टा टेक यही है ब्रह्म की, धस काया में देख।
बाहर भीतर एकसा, यही ब्रह्म की टेक।।"[4]

अर्थात् बेनामी जी ने यह स्पष्ट कर दिया है कि ब्रह्म मनुष्य के घट के भीतर ही समाया हुआ है। वे कहते हैं कि यदि मनुष्य ब्रह्म को खोजना चाहता है, तो अन्तःकरण में ही इसकी खोज करनी पड़ेगी। इसी प्रकार श्री बेनामी जी ने ब्रह्म के रूप–आकार को भी स्पष्ट किया है। अपने ब्रह्म की विशेषता एवं उसके रूप का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं–

"तता तिरगुण तीत अतीत हूँ, धस काया में देख।
तीन गुणन ते रहित हूँ, निराकार निरलेप।।"[5]

यहाँ बेनामी जी ने यह भी स्पष्ट किया है कि जब तक मनुष्य रजोगुण, तमोगुण एवं सतोगुण से युक्त है, तब तक उसे ब्रह्म के निरगुण–निराकार रूप के दर्शन कदापि नहीं हो सकते। श्री बेनामी जी ने माना है कि ब्रह्म के स्वरूप एंव आकार–प्रकार के विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। ब्रह्म की आकृति एवं प्रकृति को तो स्याही, कलम, दवात आदि के द्वारा भी रूपायित नहीं किया जा सकता। ब्रह्म तो ज्योतिस्वरूप है। मनुष्य जब योग–साधना एवं ध्यानादि के द्वारा पूर्णतः एकाग्र एवं दत्तचित हो जाता है, शून्य समाधि में पहुँच जाता है, तो उसे ब्रह्मानुभूति स्वतः ही होने लगती है। परंतु इस साधना हेतु यह आवश्यक है कि मनुष्य पहले स्वयं को योग, साधना के पूर्णतः योग्य बना ले। इसके लिए विषय–वासनाओं के जटिल मकड़जाल को तोड़ना आवश्यक है। बेनामी जी ने अपने ब्रह्म की एक विशेषता की ओर इंगित करते हुए यह भी स्पष्ट किया है कि उनके ब्रह्म सगुण होते हुए भी निर्गुण हैं। उन्होंने माना है कि मानव देह ब्रह्म का ही प्रतिरूप है। यह शरीर ही परब्रह्म है। यदि मुनष्य इसके दर्शन करना चाहता है, तो बस आवश्यकता इतनी है कि वह इसके भीतर झांके और घट भीतर विराजमान ब्रह्म को पहचान ले। इसीलिए इनके ब्रह्म सगुण होकर भी गुणों से रहित हैं। श्री बेनामी जी ने कुछ ऐसा ही लिखा है–

"नमो अलख आनंद नमो, नमो निष्कलंक विदेही।।
नमो सगुण गुण रहित, नमो निज व्यापक देही।।"[6]

उन्होंने अपने इस पद में अपनी ब्रह्म विषयक अवधारणा को एकदम स्पष्ट कर दिया है। इन्होंने स्पष्ट किया कि ब्रह्म तो मानव शरीर

का ही पर्याय है, इसीलिए यह सगुण है और सभी प्रकार के गुणों (रज, सत, तम) से दूर रहकर ही इस गुण रहित अर्थात् निर्गुण को प्राप्त किया जा सकता है। बेनामी जी ने बताया है कि ब्रह्म की अनुभूति हेतु निष्कलंक अथवा पूर्णतः दोष रहित होना अनिवार्य है। यदि मनुष्य इस वांछित अपेक्षा पर खरा उतरता है, तो उसके मन रूपी चक्षु खुल जाते हैं और मनुष्य को ऐसा प्रतीत होने लगता है कि जैसे अज्ञान रूपी बादल के पीछे से ब्रह्म रूपी सूर्य उदित हो गया हो। बेनामी जी मानते हैं कि ब्रह्म सर्वज्ञ है, सच्चिदानंद है, अनाथों का नाथ है, वह सभी प्राणियों का प्रतिपालन करने वाला है। ब्रह्म सगुण–निर्गुण दोनों ही से ऊपर है। वह अलख, निरंजन एवं निरपेक्ष है। ब्रह्म चारों वर्णों से परे है फिर भी वह सभी में समाया हुआ है। अपनी इस अवधारणा में ब्रह्म, जीव से भिन्न नहीं है। यह अद्वैत ही बेनामी जी के ब्रह्म का मूल सार है। ब्रह्म के विषय में श्री बेनामी जी की यह धारणा वेदांत पर आधारित है। उन्होंने अपनी ब्रह्म विषयक अवधारणा के माध्यम से राम एवं रहीम की दार्शनिक एकता को स्थापित करने का प्रयास किया है। संतो के इस स्वभाव की पुष्टि भक्ति साहित्य के आलोचकों ने भी की है। एक आलोचक का यह कथन है कि ब्रह्म को राम या रहीम नाम देने और इस प्रकार हिन्दू–मुसलमान दोनों धर्मों की दार्शनिक एकता उपस्थित करने का प्रयास भी संत वाणी साहित्य में दृष्टिगत होता है।[6] बेनामी जी ने ब्रह्म को किसी एक व्यक्ति एवं परिवार की ही सम्पत्ति नहीं माना है। ब्रह्म तो कण–कण में है, सबके लिए है, परंतु जब तक उसे प्राप्त करने की अभिलाषा हृदय में उत्पन्न ही नहीं होती है, तब तक उसे पाना संभव नहीं है। अपने ब्रह्म की उपस्थिति एवं व्याप्ति पर प्रकाश डालते हुए श्री बेनामी जी लिखते हैंः–

"लोह दारू पाषाण में, जल थल माँय आकाश।
सहचर अचर पर्वत सबहिं, ज्योति ब्रह्म प्रकाश।।"[7]

उनके ब्रह्म का यह स्वरूप कितना व्यापक है, यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इतना व्यापक स्वरूप होने पर ये मानते हैं कि ब्रह्म को प्राप्त करना इतना सहज भी नहीं है। ब्रह्म की दिव्य अनुभूति के लिए शून्य समाधि की आवश्यकता है। वे कहते हैं कि ब्रह्मानुभूति उन्हें भी तभी जाकर हुई, जब उन्होंने स्वयं को शून्य समाधिस्थ कर लिया। उनके शब्दों मेंः–

"बेनामी बारहखड़ी, कही शून्य में जाय।
निरालम्ब पद को गये, सुन्य समाधि लगाय।।"[8]

अपने ग्रंथ के बारहखड़ी शीर्षकान्तर्गत उन्होंने अपने ब्रह्म के स्वरूप पर विस्तृत चर्चा की गई है। वे कहते हैं कि ब्रह्म यूं तो घट–घट में समाया हुआ है, परंतु मन रूपी ठग ने सभी मनुष्यों को ठग लिया है। सभी मनुष्य मन की ठगी के कारण सांसारिक विषय–वासनाओं में आकण्ठ डूबे हुए हैं। यही कारण है कि लोगों की मति मारी गई है और वे ब्रह्म के इस रूप को पहचानने मे असमर्थ हैं। जब तक मनुष्य अपने मन रूपी भुजंग पर चढ़ी विषय–वासनाओं की केंचुली को नहीं उतार फैंकता है, तब तक ब्रह्म का दर्शन उनके लिए दुर्लभ ही रहेगा। परंतु जैसे ही मानव इस केंचुली को उतार देता है, वैसे ही एक नितांत अभिनव दृष्टि के कारण उसे ब्रह्म का दीदार होने लगता है। वे कहते हैं कि जिस प्रकार दूध के भीतर मक्खन विद्यमान होता है, उसी प्रकार घट भीतर ब्रह्म विद्यमान है। परंतु बिना मथे दूध में विद्यमान मक्खन को प्राप्त करना जिस प्रकार असंभव है, उसी प्रकार हृदय को भी योग, साधना, ध्यानादि के द्वारा मथना पड़ता है, तभी ब्रह्मनूभूति रूपी मक्खन मनुष्य को प्राप्त हो सकता है। जो व्यक्ति ब्रह्म की इस साधना को अपनी साधना बनाकर ब्रह्मनुभूति को अपना साध्य बना लेता है, उसे कैसी अनुभूति होती है, उनकी वाणी में ही अनुभव की जा सकती हैः–

"जो गावे सीखे सुने, निरालम्ब पद पाय।
अब घट भीतर देखले, ब्रह्म में ब्रह्म समाया।।"[9]

श्री बेनामी जी की मान्यता है कि ब्रह्म से बढ़कर इस संसार में कुछ भी नहीं है। यदि कुछ सत्य है तो केवल ब्रह्म ही है। यदि संसार में कुछ सम्पूर्ण है, तो एक ब्रह्म ही पूर्ण है, शेष सब कुछ अपूर्ण एवं असत्य हैं। ब्रह्म ही संपूर्ण सत्य है। वह अनाथों का नाथ है, दुःखी एवं पीड़ित जीवों का उद्धार करने वाला है। वह इतना दयालु है कि प्रत्येक शरणागत पर अपनी करूणा की वर्षा कर देता है। वह आनंद प्रदान करने वाला, आनंदस्वरूप है, सर्वातीत एवं सर्वज्ञ है। जहाँ तक जड़ एवं चेतन का विस्तार है वहीं तक ब्रह्म का भी विस्तार है। संपूर्ण विश्व का जो ताना–बाना बुना गया है, यह ईश्वर द्वारा ही बुना गया है। इस ताने को बुनने वाला वही सर्वेश्वर सबका स्वामी हैं। सभी प्राणियों में ब्रह्म की उपस्थिति भी एक समान है।
उनके ही शब्दों मेंः–

बेनामी कोली कुर्बाना, जिनने बुना विहंगम ताना।
समता सूत भिजोया सारा, एक सूत का सकल पसारा।।[10]

उनका कथन पूर्णतः स्पष्ट है कि इस संसार के ताने–बाने को जिसने बुना है, वह ईश्वर ही है। उसने अपनी समदृष्टि क्षमता से ही इसका निर्माण किया है। इस संपूर्ण सृष्टि के कण–कण में उसी का अंश है। संसार के जड़ एवं चेतन के कण–कण में विद्यमान होने के कारण भी अज्ञानी मनुष्य इसे पहचान नहीं पाता। यही मनुष्य की विडम्बना है। ब्रह्म केवल अनुभूति का विषय है। वह ज्योतिस्वरूप है। जब जीव (मनुष्य) को ब्रह्मानुति होती है, तो वहाँ पर प्रकाश दिखाई देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे असंख्य सूर्य एक ही साथ उदित हो गए हों। ये कहते हैं कि संत योगी पुरूष ही उस दिव्य प्रकाश के तेज को देख पाते हैं। किसी अन्य के वश की बात यह नहीं है। कैसी दिव्य ज्योति वहाँ दिखती है इसका नमूना बेनामी जी की वाणी में द्रष्टव्य हैः–

"तख्त बिछायो चाँदन चौक में, जहाँ अनहद की है झनकार।
ज्योत कुदरती जहाँ झिलमिली, अंसख्य सूर्य जहाँ करे प्रकाश।।"[11]

अर्थात् इनके ब्रह्म ज्योतिस्वरूप हैं। योग, साधना एवम् आत्मज्ञान से ही इस दिव्य प्रकाश को अनुभव किया जा सकता है। उनके यह कहने से कि उसका तेज असंख्य सूर्यों से भी तेज है, तो यह कहा जा सकता है कि उनको अपनी साधना द्वारा ब्रह्म की दिव्यानुभूति अवश्य ही हुई होगी। अन्यथा बिना अनुभूति के किसी वस्तु (ब्रह्म) का ऐसा चित्रण करना संभव नहीं है। श्री बेनामी जी एक सच्चे एवं सिद्ध योगी पुरूष थे और उन्हें ब्रह्म के इस स्वरूप का साक्षात्कार अवश्य ही हुआ होगा। उनके उक्त कथन से स्वंयमेव यह सिद्ध हो जाता है कि वह अलख, निरंजन, आनन्दमय निर्गुण, निराकार, घट–घट व्यापी एवं ज्योतिस्वरूप है। यह केवल अनुभूति का विषय है, फिर इसे मन्दिर एवं मस्जिद आदि में कैसे खोजा जा सकता है?
अंत में, इनके ग्रंथ का गहन अध्ययन करने के पश्चात् यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि उनके ब्रह्म का स्वरूप निर्गुण–निराकार

है, वह घट–घट में समाया हुआ है। मनुष्य का प्रतिरूप होने के कारण वह सगुण भी है, पंरतु उसका साक्षात्कार ज्योतिरूप में अर्थात् निराकार रूप में ही संभव है। मन के मैल एवं मोह–माया का परित्याग एवं योग–साधना द्वारा इस ब्रह्म की अनुभूति की जा सकती है। अन्य सभी प्रकार के बाह्याडम्बर व्यर्थ हैं। उनके ब्रह्म के स्वरूप स्थान एवं प्राप्ति की धारणा को इस प्रकार समझा जा सकता हैः–

"मदन मान मारे जिन–जिन ने जगन्नाथ जोई पाया।
ममता माया मैल मन धोये, अलख इसी तन मे पाया।।"[12]
"बेनामी सतगुरू अविनाशी, व्योम तत्त्व निरधार।
यही ठिकाना ब्रह्म का जी, योग युक्त उधार।।"[13]

सन्दर्भ

1. डॉ0 विश्म्भर दयाल अवस्थीः 'आधुनिक हिन्दी काव्य में भक्ति तत्त्व' पृ0 37
2. डॉ0 जयनाथ नलिनः 'भक्ति काव्य में माधुर्य भाव का स्वरूप' पृ0 29–30
3. बेनामी आत्म–बोध, 'आरती' शीर्षक पृ0 6
4. डॉ0 राजदेव सिंहः 'संत साहित्यः पुनर्मूल्यांकन' पृ0 146
5. बेनामी आत्म–बोध, 'बारहखड़ी' शीर्षक, पृ0 2
6. वही, पृ0 3
7. बेनामी आत्म–बोध, 'आरती' शीर्षक, पृ0 6
8. यज्ञदत शर्माः कबीर साहित्य और सिद्धांत, पृ0 66
9. बेनामी आत्म बोध 'बारहखड़ी' शीर्षक, पृ04
10. वही,पृ05
11. बेनामी आत्म–बोध,'बारहखड़ी' शीर्षक पृ0 5
12. बेनामी आत्म–बोध,'बारहखड़ी' शीर्षक पृ0103
13. बेनामी आत्म–बोध,'बारहखड़ी' शीर्षक पृ0147